सांप्रदायिकता के फैलाव के पीछे शासक वर्गों की और दुश्मनों की चाल को वे भलीभांति समझते थे इसीलिए ये बेबाकी से कहते थे कि- 'देते हैं हथियार/शासक गरीबों को/पानी नहीं देते।'[14] पोखरण में अणु अस्त्र विस्फोट के बाद नयी की पहली गरमी के दिनों में पानी की कमी ने पूरे राजस्थान और गुजरात में अकाल की जो स्थिति पैदा कर दी, वह कवि की उक्त पंक्तियों से पूरी तरह चरितार्थ होती है।

रघुवीर सहाय की कविता में 'पानी' का बिंब शुरू से अंत तक बार-बार आया है। पानी मनुष्य की न केवल पहली जरूरत है बल्कि समता और समरसता का प्रतीक भी है। हमारे समाज में सरकारें बार-बार यह घोषणा करती है कि अमुक साल तक हर किसी के लिए पीने को पानी की व्यवस्था हो जायेगी। मगर यह वायदा कभी पूरा नहीं होता। आज भी अकाल और सूखे की स्थितियाँ हर जगह बनी रहती है।

'सच क्या है' कविता में वे लिखते हैं- इस झूठे करुणामय मन को धिक्कार है वह दुख ही सच्चा है जो हमने झेला है। इसी तरह इस संकलन में एक कविता है 'फूट', जिसमें वे आज भी सांप्रदायिकता के माहौल पर टिप्पणी करते हैं कि दंगों में मारे जाने वाले और बचे हुए के बारे में भी हमारे भीतर एक असमानता का बोध काम कर रहा होता है। असमानता की चेतना सिर्फ यह जानने की कोशिश करती है कि जो मारा गया वह हिंदू था या मुसलमान या सिख, वह ऐसा नहीं सोचने देती कि जो मारा गया एक इंसान था। इसी को कविता में उन्होंने इस तरह प्रस्तुत किया है-

हिन्दू और सिख में
बंगाली और असमियों में
पिछड़े और अगड़े में
पर इनसे बड़ी फूट
जो मारा जा रहा और जो बचा हुआ
उन दोनों में है।

मनुष्य मनुष्य के बीच समानता की भावना रखने वाले नए मानव की खोज उनका रचनात्मक लक्ष्य था। शुरू के ही दिनों में अपने एक लेख में उन्होंने लिखा था कि 'संश्लिष्ट रूप में नए, मानव की खोज ही नई कविता का धर्म है। वे जीवनपर्यंत इसी नए मानव की खोज में लगे रहे। मूल्यों के स्तर पर बेहतर आदमी बनाने की उनकी कामना से ही उनकी रचनात्मकता को ऊर्जा मिली। अपने अंतिम संकलन के 'साइकिल रिक्शा' कविता में रिक्शा चालक और सवार के बीच की असामनता उन्हें खटकती है, लेकिन एक बिंदु पर जब उनमें समानता देखते हैं तो कह उठते हैं-

सिर्फ जब ढुलाई पर दोनों झगड़ते हैं
हैसियत उनकी बराबर हो जाती है।

वे शोषित जन की हैसियत को इस समाज में जैसी है वैसी नहीं देखना चाहते थे। जहाँ भी ना बराबरी को अमल में आते देखते थे, वे अभिव्यक्ति के खतरे उठाने को तैयार रहते थे। वे जन के दुश्मन को पहचानते थे। 'टेलीविजन' कविता में वे जो कहते हैं, वह आज भी कितना सही है, यह कहने की आवश्यकता नहीं-

'वह चेहरा जो जिया या मरा व्याकुल जिसके लिए दिया
उसके लिए समाचारों के बाद समय ही नहीं दिया
तबसे मैंने समझ लिया है आकाशवाणी में बन ठन
बैठे हैं जो खबरों वाले वे सब हैं जन के दुश्मन।

रघुवीर सहाय की कविता में औरतें खिलंदड़ेपन का लक्ष्य नहीं रह गई। वे यथार्थवादी नजरीये से देखते हैं-

हाथ बालों पर नहीं जिनके कभी फेरा गया
बैठकर दो चार के संग
तजुर्बे अपने सुनाने का नहीं मौका मिला,
औरतें वे सूख कर रह गई'

उनकी बच्चियों ने जवां होकर हादियों की कोठियाँ पायी।

मरणोपरांत प्रकाशित 'एक समय था' संग्रह में औरतों पर जो कविताएँ हैं उनमें औरत या तो जुल्म का शिकार हैं या फिर शिकार बनने की प्रक्रिया में है। 'औरत की पीठ' उनके इस नजरिए का साक्ष्य है-

औरत की पीठ उसका इतिहास है
उस पर जुल्म का असर वहाँ देखो
अपने सीने का अगर उसने छिपा रखा हो।

आखिरी संग्रह की कविताओं में नारी विषयक जो कविताएँ हैं उनमें उसका शोषित रूप ही ज्यादा है, उन कविताओं में 'माँ' है, 'मेरी स्त्री', 'संगिनी' है, 'उसका मन' है। नारी की चेतना में आने वोल 'परिवर्तन' पर भी उनकी निगाह थी और 'नई पीढ़ी' की नई चेतना का भी अहसास उनमें था। अंतिम दौर की कविताएँ उनकी इसी जागरूकता का प्रमाण है। इस संबंध में राजेश जोशी ने ठीक ही कहा है कि 'स्त्री को लेकर उनका नजरिया बदला है। उस चेहरे को देखने की कोशिश भी की है जो 'उसका विद्रोह है'। पुरुष समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी अपनी मानसिकता और कमी का एक गहन विश्लेषण है। पर उसमें स्त्री की पीड़ा अधिक है, उसका जुझारूपन कम।'

इस तरह हम देखते हैं कि रघुवीर सहाय की कविता में समाज की क्रूर विसंगतियों का लेखा-जोखा है, उनके प्रति क्षोभ है, आलोचना है, इस सबके बावजूद इन विसंगतियों और अभावों को दूर करने के लिए यानी समाज को विकास के अगले चरण में ले जाने के लिए एक वैचारिक संकल्प है। वे जन के दुश्मन वर्गों के खिलाफ खड़े होकर भी खुद को अकेला रखकर 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' की कामना रखते थे। वे जन के लोकतांत्रिक सरोकारों के कवि थे, इसीलिए उनका हिंदी कविता में और हमारे सांस्कृतिक रचनाकर्म में महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। ■